4.3 क्षेत्र कार्य विचार (Field work view)

क्षेत्रकार्य विचार इस पद्धति पर आधारित है कि समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र में समाज का प्रत्यक्ष अध्ययन किया जाए। सामाजिक मानवशास्त्री पहले अपने अध्ययन-क्षेत्र को चुनता है, फिर उस क्षेत्र में जाकर प्रत्यक्ष निरीक्षण या अवलोकन द्वारा अपने अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों को एकत्र करता है और उसी आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्षों को निकालता हैं। आदिम समाजों के विषय में जो प्रत्यक्ष अवलोकन किए गए हैं उन्हें मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम तो वे अवलोकन जो भूतकाल में अप्रशिक्षित व्यक्तियों जैसे- पर्यटक, मिशनरी आदि के द्वारा किये गए थे। इनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का न्तिांत अभाव था। इस कारण वे अध्ययन वर्णन-प्रधान तथा अतिरंजित होते थे। दूसरी श्रेणी में वे अवलोकन आते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले आधुनिक मानवशास्त्रियों के द्वारा किए गए हैं और किए जा रहे हैं।

प्रथम प्रकार का अवलोकन 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ हुआ था जबकि आदिम समाज के लोगों का सभ्य समाज के साथ प्रथम संस्पर्श पर्यटक तथा मिशनरियों के द्वारा हुआ। इन पर्यटकों और मिशनरियों ने दुनिया के विभिन्न भागों में निवास करने वाले आदिम लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अनेक रोचक विवरण अपने देशवासियों को प्रस्तुत किया है । परंतु इन पर्यटकों एवं मिशनरियों को आदिम जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन या अवलोकन करने का न तो वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त था और न ही इन्हें इस कार्य को करने की किसी क्रमबद्ध पद्धति का ज्ञान था। फलत: इन पर्यटकों तथा मिशनरियों ने केवल उन वस्तुओं, प्रथाओं या संस्थाओं को ही देखा जो उनके दृष्टिकोण से अधिक रोचक या अनोखे प्रतीत हुए या जिनके प्रति उनकी दृष्टि स्वभावत: ही आकर्षित हुई। उन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार उन सभी को देखा और समझा और फिर अनेक बातों को अपनी कल्पनानुसार जोड़-तोड़ कर उन्हें अधिकाधिक रोचक रूप में प्रस्तुत किया।

तत्पश्चात् **डारविन** की खोज के बाद विकासवादियों का एक नया वर्ग सामने आया। इसी वर्ग ने विकासवादी योजना को समस्त सामाजिक संस्थाओं के उद्भव तथा विकास में प्रयोग किया। इस कार्य में उन्हें उपरोक्त पर्यटकों तथा मिशनरियों द्वारा प्रस्तुत विवरण से पर्याप्त सहायता मिली। परंतु इन वैज्ञानिकों की सर्वप्रमुख कमी यह थी कि ये लोग घर बैठे ही विकासवादी योजना को लागू करते रहे तथा उससे निष्कर्ष निकालते रहे। आदिम समाजों में जाकर वास्तविक अवलोकन द्वारा अपने इन निष्कर्षों की यथार्थता की जाँच करने की आवश्यकता इन विकासवादी लेखकों ने नहीं महसूस की, इस कारण वास्तविक तथ्यों से परे इनके सैद्धांतिक निष्कर्षों में वैज्ञानिक यथार्थता बहुत कम थी। चूँकि ये वैज्ञानिक घर बैठे सैद्धांतिक निष्कर्षो को निकाला करते थे, इस कारण इन्हें **''आराम कुर्सी पर बैठकर निष्कर्ष निकालने वाले मानवशास्त्री''** (Armchair Anthropologist) कहा जाता है।

जिस प्रकार पर्यटकों तथा मिशनरियों की 'अध्ययन पद्धति' को आज स्वीकार नहीं किया जाता है उसी प्रकार आराम कुर्सी वाले मानवशास्त्रियों की पद्धति को भी आज उचित नहीं माना जाता। सैद्धांतिक निष्कर्ष वास्तविक अथवा वैज्ञानिक नहीं भी हो सकता है, इस कारण इस पद्धति पर अधिक भरोसा करना उचित नहीं। सैद्धांतिक निष्कर्षों को वास्तविक तथ्यों की कसौटी पर कस कर देखना चाहिए। इसलिए आज के मानवशास्त्रियों ने अपनी अध्ययन पद्धतियों में सैद्धांतिक निष्कर्ष के साथ वास्तविक निरीक्षण या अवलोकन को भी जोड़ दिया है और इन दोनों के समन्वय से ही आधुनिक समाजिक मानवशास्त्र का वैज्ञानिक विकास संभव हुआ है। आज यह अनुभव तथा स्वीकार किया जाता है कि वास्तविक रूप में अवलोकित तथ्यों को सुदृढ़ आधार पर आधारित किये बिना सैद्धांतिक निष्कर्ष न तो यथार्थ और न ही उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

क्षेत्र कार्य के तीन आवश्यक आधार हैं : प्रथम तो उपकल्पना, द्वितीय निरीक्षण तथा तृतीय परीक्षण। जैसा कि स्पष्ट है सिद्धान्त बनाने वाले अन्य लोगों के जैसे पर्यटक, मिशनरी पादरी आदि के निरीक्षण पर भरोसा करके नियमों का प्रतिपादन करते थे। परंतु ये नियम दो कारणों से वैज्ञानिक यथार्थ नहीं हो पाते थे- प्रथम तो यह कि यह पता नहीं चल पाता था कि वे पर्यटक मिशनरी पादरी आदि जो कुछ खबर दे रहे हैं या एक विषय का ढ़ंग से निरूपण कर रहे हैं वह ठीक भी है या नहीं। इस प्रकार इनके द्वारा प्रस्तुत बातों या इनके द्वारा देखी गई घटनाओं के वर्णन पर सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले विद्वानों का कोई नियंत्रण नहीं रहता था जिसके फलस्वरूप उनका निष्कर्ष यथार्थ ही है, यह दावा नहीं किया जा सकता था। द्वितीय, इस प्रकार के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाले विद्वान अपनी उपकल्पनाओं की परीक्षा आगे और निरीक्षण के द्वारा नहीं कर पाते थे। किसी भी अध्ययन को यथार्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उपकल्पनाओं की परीक्षा और पुन: परीक्षा वास्तविक निरीक्षण के आधार पर की जाए। आधुनिक मानवशास्त्री आज यह स्वीकार करते हैं कि उपरोक्त दोनों कमियों को दूर किये बिना सामाजिक मानवशास्त्र में कोई भी प्रगति संभव नहीं। प्रत्येक उपकल्पना की परीक्षा एवं पुर्नपरीक्षा वास्तविक निरीक्षण के द्वारा होना अनिवार्य और आवश्यक दोनों ही है। ऐसा देखा गया है कि कुछ विद्वानों ने स्वयं निरीक्षण किये बिना ही दूसरों की बातों या वर्णनों पर निर्भर रहकर एक समाज की जिन प्रथाओं के संबंध में लिखा है, वे वास्तव में वैसी नहीं हैं। अगर वे विद्वान उन प्रथाओं का वास्तविक निरीक्षण करने का कष्ट करते तो वे कभी भी उन प्रथाओं को उस रूप में प्रस्तुत नहीं करते जैसा कि उन्होंने किया है। आधुनिक मानवशास्त्रियों ने यह भी अनुभव किया है कि कुछ सामान्य ज्ञान के आधार पर किसी समाज की किन्हीं प्रथाओं के संबंध में उपकल्पनाओं को बना लेना ही पर्याप्त नहीं है। ये उपकल्पनाएँ तब तक अर्थहीन हैं जबतक इनकी पुन:परीक्षा वास्तविक निरीक्षण के द्वारा न कर ली जाए। हो सकता है कि वास्तविक निरीक्षण इन उपकल्पनाओं को पूर्णतया गलत ही प्रमाणित कर दे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक मानवशास्त्र की सर्वप्रमुख पद्धति क्षेत्र कार्य पद्धति है जो उपकल्पना के निर्माण और वास्तविक निरीक्षण पर आधारित है। सर्वप्रथम तथ्यों का निरीक्षण किया जाना चाहिए और उसके आधार पर उपकल्पनाओं को बनाना चाहिए, परंतु ये दोनों ही प्रारंभिक कार्यक्षेत्र हैं। इसके बाद हमें

फिर से एक बार वास्तविक निरीक्षण का कार्य प्रारंभ करना चाहिए जिससे उन उपकल्पनाओं की परीक्षा एवं पुनः परीक्षा संभव हो सके। ऐसा करने पर हम यह आवश्यकता अनुभव करेंगे कि जिस उपकल्पना को लेकर हमने अध्ययनकार्य प्रारंभ किया था उसमें कुछ सुधार करना जरूरी है या उसे बिल्कुल बदलकर नई उपकल्पना का निर्माण आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चलनी चाहिए, जब तक हमारी उपकल्पना की यथार्थता प्रमाणित न हो जाए। अतः निरीक्षण व उपकल्पना को एक साथ मिलाकर और काम में लाकर अध्ययन करने की पद्धति ही सामाजिक मानवशास्त्र की समस्त विशेष पद्धतियों का सार है, परंतु इस पद्धति का प्रयोग क्षेत्र में अर्थात् उस समुदाय या समाज में जाकर ही हो सकता है जिसका हमें अध्ययन करना है। आधुनिक मानवशास्त्रियों का दृढ़ मत है कि केवल इसी तरीके से हम मानवशास्त्रीय अध्ययन ठीक से कर सकते हैं या उन अध्ययनों को यथार्थ बना सकते हैं। इसलिए केवल निरीक्षण करने की पद्धति ही काफी नहीं है, जबतक हम उस समुदाय में, जिसका कि हमें अध्ययन करना है, जाकर कुछ समय के लिए बस न जाएँ। जिन लोगों का अध्ययन करना है उनके यथासंभव निकट संपर्क में रहे बिना उनके, सामाजिक जीवन या संस्कृति के विषय में कोई वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना कदापि संभव नहीं। इसलिए आधुनिक मानवशास्त्री केवल निरीक्षण ही नहीं करते हैं बल्कि लोगों के निकट सम्पर्क में आकर और उनके साथ बसकर उनकी प्रथाओं, विश्वासों आदि के विषय में भी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और उनसे संबंधित सामान्य नियमों को खोजते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक मानवशास्त्र मानव के सामाजिक जीवन एवं संस्कृति का अध्ययन है। इएलिए इसके अध्ययन का प्रमुख आधार क्षेत्र कार्य पद्धति होना चाहिए जो वास्तविक क्षेत्र में वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण द्वारा ही संभव है।

4.4 इरावती कार्वे के विचार (Views of Irawati Karve)

इरावती कार्वे ने संयुक्त परिवार के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए है। उनके अनुसार, संयुक्त परिवार की निश्चित परिभाषा करना अत्यंत कठिन है। कुछ लोग परिवार की संयुक्त प्रकृति पारस्परिक कर्त्तव्यपरायणता पर आधारित करते हैं, तो कुछ साथ-साथ निवास पर। श्रीमती कार्वे ने लिखा है :- **''एक संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो सामान्यतया एक भवन में रहते हैं, जो एक रसोईघर में पका भोजन करते हैं, जो सामान्य संपत्ति के मालिक होते हैं और जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो किसी-न-किसी प्रकार एक दूसरे के रक्त संबंधी हैं।''** परंतु इसके अन्य आधार भी बताए गए हैं। इस पर भी यह कहना कि यह परिवार संयुक्त है तथा यह असंयुक्त, अत्यंत कठिन है। अतः इसकी परिभाषा करने के स्थान पर उसके सामान्य लक्षणों को समझना हितकर तथा उपयोगी होगा। इरावती कार्वे ने संयुक्त परिवार के मुख्य-लक्षणों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार संयुक्त परिवार के लक्षण इस प्रकार हैं:-

(1) सामान्य निवास - संयुक्त परिवार का एक प्रमुख लक्षण एक ही स्थान पर निवास करना है। सम्पूर्ण गृह परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए खुला रहता है।

(2) सामान्य पाकशाला - संयुक्त परिवार का दूसरा प्रमुख लक्षण सामान्य पाकशाला है। परिवार का प्रत्येक सदस्य यहीं पर भोजन करता है।

(3) **सामान्य कोष** - संयुक्त परिवार का तीसरा प्रमुख लक्षण सामान्य आय-व्यय है। परिवार का एक सामान्य कोष होता है। परिवार के समस्त सदस्यों की आय सामान्य कोष में जमा हो जाती है तथा इसमें से सम्पूर्ण परिवार का व्यय चलता है- इस पर आधारित नहीं रहता कि किसने कितनी आय की है, अपितु प्रत्येक की आवश्यकता पर आधारित रहता है। परिवार के सभी पुरुष सदस्य चाहे वे कमाते हों या नहीं, स्त्रियाँ-विवाहित, अविवाहित, विधवा तथा बच्चे इत्यादि परिवार में उपलब्ध सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं के उपयोग करने के समान अधिकारी होते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त होता है तथा यह उसकी आय पर आधारित नहीं होता। व्यक्ति द्वारा प्रदत्त सहयोग की तुलना में मिलने वाली सुविधाओं की मात्रा की इस उदार व्यवस्था के लिए अत्यधिक सहनशीलता, प्रेम, सहानुभूति एवं अनुकूलन की आवश्यकता होती है। **'सामर्थ्य के अनुसार सहयोग करना या देना एवं आवश्यकतानुसार लेना'** के सिद्धान्त पर संयुक्त परिवार का अस्तित्व टिका हुआ है। संयुक्त परिवार में सम्पत्ति परिवार की होती है, न कि एक व्यक्ति की। **चंद्रशेखर** ने उचित ही लिखा है : **''संक्षेप में, संयुक्त परिवार केवल उत्पादन के साधनों का सामान्य स्वामित्त्व तथा श्रम के प्रतिफल का सामान्य उपयोग है।''**

(4) **सामान्य पूजा तथा धर्म-कर्म** - संयुक्त परिवार का एक आवश्यक महत्त्वपूर्ण लक्षण सामान्य पूजा तथा धर्म-कर्म है। सामान्य पितृपूजा के कारण संबंधी एक-दूसरे से बँधे रहते हैं। प्राचीन काल में धर्म का एक विशेष रूप पितरों या पूर्वजों की पूजा थी। पितृपूजा परिवार की संस्था को कई प्रकार से प्रभावित करती है। इसे पारिवारिक जन सामूहिक रूप से करते हैं, उनकी पूजा का स्थान वही होता है जो उनके पूर्वजों का था। उस स्थान के साथ एक पवित्रता का संबंध जुड़ा होता है। श्री **राधाविनोद पाल** ने उचित ही लिखा है, **''धार्मिक विधियों का प्रारंभिक रूप मृत व्यक्तियों की पूजा थी। वंशजों का यह कर्त्तव्य था कि वे पूजा को जारी रखें। अतः इससे पूर्ण रूप से न सही आंशिक रूप से ही परिवार के संरक्षण को सर्वत्र बड़ा महत्त्व मिला। इसीलिए हिन्दू, यूनानी और रोमन कानूनों में पुरानी सीमाओं (पूर्वजों द्वारा बनायी पारिवारिक भू-सम्पत्ति की) के उल्लंघन के लिए कठोर दण्ड नियत किये गए थे। प्रारंभिक युगों के लोगों ने परिवार तथा भूमि में एक रहस्यमय संबंध की कल्पना की। परिवार के सदस्यों के पितरों के प्रति धर्मपालन के कुछ कर्त्तव्य होते थे। वे उन कर्त्तव्यों से (पारिवारिक) भूमि और यज्ञ-वेदी से जुड़े रहते थे। जैसे यज्ञ-वेदी भूमि से संयुक्त रहती थी, उसी प्रकार परिवार भूमि के साथ बँधा रहता।''** दैनिक पूजा, त्यौहारों के अवसर पर पूजा, संस्कार तथा श्राद्ध इत्यादि परिवार के सदस्यों को एक-दूसरे से बाँधे रहते हैं।

ये संयुक्त परिवार के प्रमुख लक्षण हैं। इनके फलस्वरूप संयुक्त जीवन व्यतीत करने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। ऋंगवेद में संयुक्त परिवार के मर्म को इन शब्दों में समझाया गया है- ''मनुष्यों को एक साथ चलना चाहिए, एक साथ बोलना चाहिए और एक-दूसरे के मन को अच्छी तरह समझना चाहिए।''

संयुक्त परिवार के उपर्युक्त समस्त लक्षण एक प्राकर से भौतिक हैं तथा इन्हें हम संयुक्त परिवार का शरीर कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जब ये सब लक्षण उपस्थित हों, तभी परिवार

संयुक्त कहलाएगा। वास्तव में संयुक्त परिवार की आत्मा पारस्परिक कर्त्तव्यपरायणता है। जब तक व्यक्ति इस सूत्र के द्वारा बँधे हुए हैं, तब तक वे संयुक्त परिवार के सदस्य हैं। इसका आधार न केवल सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक है अपितु मनोवैज्ञानिक भी है। भावना पर भी बहुत कुछ आधारित है। भावना पारस्परिक कर्त्तव्यपरायणता की जननी है तथा संयुक्त परिवार की प्रमुख आधार भी। आधुनिक युग में यद्यपि संयुक्त परिवार का भौतिक शरीर नष्ट हो रहा है तथापि उसकी आत्मा अभी भी अमर है। भावना एवं पारस्परिक कर्त्तव्यपरायणता संयुक्त परिवार के प्रमुख तत्त्व एवं लक्षण हैं। **डॉक्टर आई० पी० देसाई** के अनुसार **किसी परिवार के प्रकार का निश्चय उस परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंध पर आधारित है।** एक व्यक्ति भले ही अपनी पत्नी और बच्चों सहित अलग रहता हो, पृथक् भोजन बनाता हो तथा उसकी आय के साधन भी पृथक् हों एवं उसकी सम्पत्ति पर केवल उसका ही अधिकार हो, इस पर भी यदि वह अपने विस्तृत परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति उन कर्त्तव्यों को निभाता है जो एक संयुक्त परिवार के सदस्य के लिए आवश्यक है, तो उसका परिवार एकाकी परिवार नहीं माना जाएगा, उसे संयुक्त परिवार मानेंगे। यह आवश्यक नहीं है कि संयुक्त परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक ही हो। **डॉ० देसाई** ने उचित ही लिखा है, **''स्पष्टतः संयुक्त परिवार को एक बड़ा परिवार समझा जाता है। यह कहना आवश्यक है कि यह एक भ्रांतिमूलक धारणा है।''** डॉ० देसाई के अनुसार संयुक्त परिवार का प्रकार सामान्य निवास, सामान्य पाकशाला या समूह के सदस्यों की संख्या के आधार पर नहीं आधारित है, उनके अनुसार यह नातेदारी, पीढ़ियों की संख्या, सम्पत्ति, आय तथा पारस्परिक सहयोग पर आधारित है। संयुक्त परिवार की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है, **''हम उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों के (अर्थात् तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के) सदस्य रहते हों तथा उसके सदस्य एक-दूसरे से संपत्ति, आय तथा पारस्परिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के द्वारा संबंधित हों।''**